

[2010] 15 (एडीडीएल.) एस. सी. आर 1253

साफिया बी

बनाम

मो० वहात हुसैन उर्फ फ़ासी

(2010 की सिविल अपील सं. 10664)

16 दिसंबर, 2010

[वी. एस. सिरपुरकर और सिरियक जोसेफ, जे.जे.]

आंध्र प्रदेश भूमि कब्जा (निषेध) अधिनियम, 1982:

धाराएँ 7-ए, 2(ई) और 2(सी) - भूमि कब्जा - विशेष न्यायाधिकरण के समक्ष भवन की निकटवर्ती भूमि के साथ भवन के कब्जे की मांग करने हुए धारा 7ए के तहत आवेदन -
- प्रायोज्यता - अभिनिर्धारित: विवाद का विषय भवन और निकटवर्ती खुली भूमि -जब भूमि उसपर बने भवन के साथ कब्जा की जाती है, तो यह भूमि हड़पने के बराबर होगा
- इस प्रकार, 7-ए के तहत आवेदन प्रायोज्य है - उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करने में गलती की कि केवल खुली भूमि पर कब्जा करना और उसपर भवन बनाना ही भूमि हड़पने के रूप में माना जा सकता है और खुली भूमि के साथ एक भवन के कब्जे को अधिनियम के तहत भूमि हड़पने के रूप में नहीं माना जा सकता है - भूमि हड़पना - अधिकार क्षेत्र।

धारा 2(सी) - 'भूमि' - अर्थ।

दृष्टांत - सिद्धांत - अभिनिर्धारित: एक पीठ द्वारा दिया गया कानून का वक्तव्य समान या या कम संख्या के न्यायाधीशों की पीठ पर बाध्यकारी माना जाता है - पूर्ववर्ती पीठ के निर्णय के बारे में संदेह या असहमति के मामले में, अच्छी तरह से स्वीकृत और वांछनीय प्रथा यह है कि बाद की पीठ मामले को एक बड़ी पीठ को भेजेगी - तथ्यों के आलोक में, उच्च न्यायालय की खंड पीठ समान शक्ति की पीठ के कानून के वक्तव्य को

को खारिज करने में सही नहीं थी - न्यायिक अनुशासन और परिपाटी के अनुसार उन्हें इस मुद्दे को एक बड़ी पीठ को भेजना चाहिए था - न्यायिक अनुशासन।

अपीलार्थी ने भूमि के साथ में एक इमारत बिक्री पत्र द्वारा खरीदी थी।

1253

1 1254 सर्वोच्च न्यायालय रिपोर्ट [2010] 15 (ए. डी. डी. एल.) एस सी आर।

यह इमारत प्रतिवादी द्वारा जबरन कब्जा कर लिया गया था। अपीलार्थी ने आंध्र प्रदेश भूमि कब्जा (निषेध) अधिनियम, 1982 की धारा 7-ए के तहत प्रतिवादी के खिलाफ संपत्ति पर अधिकार की मांग करते हुए एक आवेदन दायर किया। विशेष न्यायाधिकरण ने आवेदन को अनुमति देते हुए प्रतिवादी को निर्देश दिया कि वह संपत्ति को अपीलार्थी को दे। प्रतिवादी ने विशेष अदालत के समक्ष अपील दायर की जिसने अभिनिर्धारित किया कि विशेष न्यायाधिकरण के समक्ष आवेदन प्रायोज्य नहीं था क्योंकि यह निकटवर्ती भूमि के साथ घर की संपत्ति के संबंध में था। विशेष न्यायालय ने विशेष न्यायाधिकरण का आदेश निरस्त कर दिया। अपीलार्थी ने रिट याचिका दायर की। उच्च न्यायालय ने मामले को नए सिरे से सुनवाई और निपटारे के लिए विशेष न्यायालय को वापस भेज दिया कि क्या संपत्ति प्रतिवादी द्वारा हड़पी गई थी और क्या वह बेदखल होने योग्य था। जहां तक विशेष न्यायाधिकरण में आवेदन की प्रायोज्यता का प्रश्न है, उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि अधिनियम न केवल भूमि पर बल्कि भवन के साथ भूमि पर भी लागू होता है। रिट याचिका का निर्णय अंतिम हो गया है। उसके अनुसरण में विशेष न्यायालय ने विशेष न्यायाधिकरण के आदेश को बरकरार रखा और प्रतिवादी को अपीलार्थी की संपत्ति देने का निर्देश दिया। पीड़ित प्रतिवादी ने एक रिट याचिका दायर किया। उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करते हुए कि चूंकि मामले में विवाद निकटवर्ती भूमि के साथ एक इमारत के संबंध में था यह पूरी तरह से विशेष न्यायाधिकरण के अधिकार क्षेत्र के भीतर नहीं आएगा, रिट याचिका की अनुमति दी और विशेष न्यायालय के फैसले के साथ-साथ विशेष न्यायाधिकरण के आदेश को दरकिनार कर दिया। इसलिए, अपीलार्थी ने प्रस्तुत अपील दायर की।

अपील को अनुमति देते हुए, न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया:

1.1 आंध्र प्रदेश की भूमि कब्जा (निषेध) अधिनियम, 1982 को इस भूमि कब्जा की गतिविधियों को प्रतिबंधित करने के लिए और उससे संबंधित मुद्दों पर प्रावधान प्रावधान बनाने के लिए लागू किया गया था। धारा 2(सी) के तहत 'भूमि' की परिभाषा के आलोक में, दोनों ही अभिव्यक्तियों का अर्थ व्यावहारिक रूप से एक ही है - भूमि हड़पना। इसलिए दोनों के बीच विभेद करना ना तो तर्कसंगत है ना ही इसका कोई औचित्य है। इसलिए, उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करने में गलती की कि अपीलार्थी द्वारा विशेष न्यायाधिकरण के समक्ष दायर आवेदन प्रायोज्य नहीं था। [पैरा 11] [1263 जी-एच; 1264-ए; जी-एच; 1265-ए-सी]

1.2 पंजीकृत बिक्री पत्र न केवल भवन के संबंध में बल्कि सामने और पीछे की खुली भूमि के संबंध में भी था। अपीलार्थी के द्वारा दायर आवेदन की प्रविष्टियों से यह स्पष्ट है कि विवाद का विषय केवल 1114 वर्ग फीट के प्लिंथ क्षेत्र वाली इमारत ही नहीं थी बल्कि 9341 वर्ग फीट क्षेत्रफल वाली खुली भूमि भी थी। दावे के सारांश में, अपीलार्थी के आवेदन ने विशेष रूप से 'घर और निकटवर्ती भूमि' के संबंध में दावा उठाया था। यह विशेष रूप से आरोप लगाया गया था कि प्रतिवादी ने जबरन घर पर कब्जा कर लिया और तब से वह घर और खुली भूमि उसके कब्जे में है। इन परिस्थितियों में, यह नहीं कहा जा सकता है कि विवाद की विषय वस्तु केवल भवन था। विवाद की विषय वस्तु भवन और निकटवर्ती खुली भूमि थी। [पैरा 12] [1266-सी-ई]

1.3 उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करने में गलती की कि केवल खुली भूमि पर कब्जा और उसपर भवन का निर्माण को भूमि हड़पने के रूप में माना जा सकता है और खुली भूमि के साथ किसी भवन पर कब्जा को भूमि हड़पने के रूप में नहीं माना जा सकता है। जब ज़मीन और उस पर मौजूद भवन पर कब्जा कर लिया जाता है, तो यह भूमि हड़पने के बराबर होगा। [पैरा 13] [1266-एफ]

1.4 विशेष न्यायाधिकरण के समक्ष अधिनियम की धारा 7-ए के तहत अपीलार्थी द्वारा दायर आवेदन प्रायोज्य था और विशेष न्यायाधिकरण के पास उसमें उठाए उठाए गए विवाद का न्यायनिर्णयन करने की आवश्यक अधिकारिता थी। इस निष्कर्ष के

अनुसार, उच्च न्यायालय के विवादित आदेश को दरकिनार किया जा सकता है और विशेष न्यायालय के निर्णय को और विशेष न्यायाधिकरण के आदेश को बहाल किया जा सकता है। [पारा 14] [1266-जी; 1267-ए-बी]

1.5 इसकी शुद्धता की जांच करना आवश्यक नहीं है उच्च न्यायालय का निष्कर्ष कि पूर्ववर्ती रिट याचिका (अपीलार्थी द्वारा दायर) में उच्च न्यायालय का निर्णय कि अपीलार्थी के विशेष न्यायाधिकरण के समक्ष आवेदन और विशेष न्यायाधिकरण के अधिकारक्षेत्र पर विचार हेतु प्रतिवादी द्वारा दायर बाद की रिट याचिका के लिए रीस जूडिकाटा के रूप में कार्य नहीं करता है की सत्यता की जांच करना आवश्यक नहीं है। हालाँकि, यह मानते हुए भी कि पहले की रिट याचिका में निर्णय रीस जूडिकाटा के रूप में काम नहीं करता था, और फिर भी अगर वे न्यायाधीश जिन्होंने बाद के रिट याचिका का फैसला किया धारा 2(सी) की व्याख्या के संबंध में और अनुसूचित संपत्ति पर इसके प्रभाव के संबंध में एक समकक्ष पीठ के दृष्टिकोण से सहमत नहीं थे, तो न्यायिक अनुशासन और व्यवहार के लिए उन्हें मुद्दे को एक बड़ी पीठ को संदर्भित करने की आवश्यकता थी। एक समान शक्ति की पीठ द्वारा कानून के वक्तव्य को खारिज करने में (बाद वाली पीठ के) न्यायाधीश सही नहीं थे। यह एक स्वीकृत नियम या सिद्धांत है कि एक पीठ द्वारा दिए गए कानून के वक्तव्य को समान शक्ति या कम संख्या वाली पीठ पीठ पर बाध्यकारी माना जाता है। अच्छी तरह से स्वीकृत और वांछनीय परिपाटी यह है कि पहले की पीठ के निर्णय के बारे में संदेह या असहमति के मामले में बाद की पीठ मामले को एक बड़े न्यायालय को भेजेगी। [पारा 15 और 16] [1267-बी-एफ]

भारत संघ और अन्य बनाम रघुबीर सिंह (मृत), वैधानिक प्रतिनिधियों द्वारा, (1989) 2 एस. सी. सी. 754; दाउदी बोहरा समुदाय का केंद्रीय बोर्ड और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य। (2005) 2 एस. सी. सी. 673 - संदर्भित।

1.6 विशेष न्यायाधिकरण द्वारा पारित आदेश और विशेष न्यायालय द्वारा पारित निर्णय को बरकरार रखा जाता है। प्रतिवादी को निर्धारित अवधि के भीतर अपीलार्थी को याचिका में अनुसूचित संपत्ति देने का निर्देश दिया जाता है इसमें विफल

रहने पर राजस्व मंडल अधिकारी याचिका में अनुसूचित संपत्ति अपीलार्थी को सौंप देगा।
[पैरा 18] [1271 - सी-ई]

पूर्वनिर्धारित संदर्भ:

(1989) 2 एस. सी. सी. 754 - उल्लेख किया गया है (पारा 17)

(2005) 2 एस. सी. सी. 673 - उल्लेख किया गया है (पारा 17)

सिविल अपीलीय न्यायनिर्णय: सिविल अपील सं. 2010 का 10664

आंध्र प्रदेश का न्यायिक उच्च न्यायालय हैदराबाद के डब्ल्यू. पी. नं. 304 2001 में दिनांक 18.04.2007 के निर्णय और आदेश से

के. स्वामी, प्रभा अपीलार्थी के लिए ।

बीना माधवन, तरुण सतीजा (लॉयर्स निट एंड कंपनी के लिए) प्रतिवादी के लिए
1258 सर्वोच्च न्यायालय रिपोर्ट [2010] 15 (ए. डी. डी. एल.) एस सी आर।

न्यायालय का निर्णय इनके द्वारा दिया गया

सिरियक जोसेफ, जे. 1. अनुमति दी गई।

2. अपीलार्थी साफिया बी के अनुसार, उन्होंने 5 फरवरी, 1969 को एक पंजीकृत बिक्री पत्र के द्वारा मोहम्मद हुसैन के घरों, संख्या 2-5-254 , 2-5-255 और 2-5-256 निकटवर्ती भूमि के साथ खरीदा था। प्रतिवादी मोहम्मद. वजाहत हुसैन उर्फ फासी ने जबरन घर नंबर 2-5-256 (4-3-65 के रूप में पुनः क्रमांकित) पर कब्जा कर लिया। इस भवन में 1114 वर्ग फीट का एक प्लिंथ क्षेत्र और आसपास की खाली जमीन है जिसका क्षेत्रफल 9341 वर्ग फीट है। । यह आरोप लगाते हुए कि प्रतिवादी एक 'भूमि हड़पने वाला' है, अपीलार्थी ने आंध्र प्रदेश भूमि कब्जा (निषेध) अधिनियम, 1982 (इसके बाद "अधिनियम" के रूप में संदर्भित) की धारा 7-ए के तहत विशेष न्यायाधिकरण, आदिलाबाद के समक्ष प्रतिवादी से भवन और निकटवर्ती भूमि पर कब्जे की मांग करते हुए 1990 का L.G.O.P संख्या 5 दायर किया। प्रतिवादी ने 1990 के L.G.O.P संख्या 5

का प्रतिवाद किया और कहा कि वह भूमि हड़पने वाला नहीं है, और यह कि उसकी माँ और उसके भाई विवादित भूमि पर कानूनन अपने अधिकार से काबिज हैं और वा निनादित भूमि के मालिक हैं। उन्होंने अपीलार्थी के इस दावे का भी प्रतिवाद किया कि उसने इस संपत्ति को 5 फरवरी 1969 को पंजीकृत बिक्री पत्र के अनुसार खरीदा था। उन्होंने आरोप लगाया कि पंजीकृत बिक्री पत्र एक जाली और मनगढ़ंत दस्तावेज़ था और यह कि स्वर्गीय मोहम्मद हुसैन संपत्ति बेचने की स्थिति में नहीं था क्योंकि वह प्रासंगिक समय में स्वस्थ मानसिक अवस्था में नहीं था। प्रतिवादी के अनुसार, अपीलार्थी के पास घर खरीदने की वित्तीय क्षमता नहीं थी और मोहम्मद हुसैन को घर बेचने की कोई आवश्यकता नहीं थी।

3. मामले में दी गयीं दलीलों और प्रस्तुत किए गए साक्ष्यों पर विचार करने के बाद विशेष न्यायाधिकरण ने 13 जून, 1997 को आवेदन को स्वीकार कर लिया और प्रतिवादी को संपत्ति अपीलार्थी को देने का निर्देश दिया। 1990 के L.G.O.P. संख्या 5 में पारित 13 जून, 1997 के अपने आदेश में विशेष न्यायाधिकरण ने अभिनिर्धारित किया:

(क) मोहम्मद हुसैन ने विवादित संपत्ति के संबंध में मूल्य प्राप्त करने के बाद अपीलार्थी के पक्ष में 5 फरवरी, 1969 के पंजीकृत बिक्री पत्र को निष्पादित किया।

(ख) अपीलार्थी विवादित संपत्ति का स्वामी है;

(ग) मोहम्मद हुसैन अपनी मृत्यु तक स्वस्थ मानसिक स्थिति में थे;

(घ) प्रतिवादी यह स्थापित नहीं कर सका कि मोहम्मद हुसैन ने घर का उत्तरी हिस्सा अपने छोटे बेटे मोहम्मद. जफर हुसैन को उपहार में दिया था और दक्षिणी भाग अपनी खुली भूमि के साथ अपने बड़े बेटे शौकत हुसैन को;

(ङ) प्रतिवादी ने विवादित संपत्ति पर कब्जा कर लिया है और एक 'भूमि हड़पने वाला' होने के नाते उसे विवादित भूमि से बेदखल किया जा सकता है; और

(च) प्रतिवादी की माँ और भाई विवादित संपत्ति पर काबिज नहीं हैं और विवादित संपत्ति को हड़पने के बाद प्रतिवादी ने अकेले उस पर कब्जा कर लिया है।

4. विशेष न्यायाधिकरण द्वारा 1990 के L.G.O.P. संख्या 5 में 13 जून, 1997 को पारित आदेश से व्यथित प्रतिवादी ने अधिनियम के तहत गठित विशेष न्यायालय में अपील, 1997 का एल. जी. ए. सं. 30, दायर की। 30 अक्टूबर 1998 के अपने फैसले के अनुसार, विशेष न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करते हुए अपील को स्वीकार कर लिया कि आवेदन विशेष न्यायाधिकरण के समक्ष विचारणीय नहीं था। तदनुसार, विशेष न्यायालय ने 1990 के L.G.O.P. सं. 5 में विशेष न्यायाधिकरण के आदेश को रद्द कर दिया और विशेष न्यायाधिकरण को निर्देश दिया कि वह अपीलार्थी को उचित अदालत में पेश करने के लिए आवेदन वापस कर दे, यदि ऐसी सलाह दी जाती है।

30 अक्टूबर, 1998 के फैसले में विशेष न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि चूँकि अपीलार्थी का आवेदन एक घर-संपत्ति के संबंध में था जिसे कथित रूप से प्रतिवादी ने हड़प लिया था यह विशेष न्यायाधिकरण के समक्ष प्रायोज्य नहीं था। विशेष न्यायालय के अनुसार, यदि किसी मौजूदा भवन पर कब्जा कर लिया जाता है, तो वह विशेष न्यायाधिकरण या विशेष न्यायालय के अधिकार क्षेत्र में नहीं आएगा और यदि भूमि हड़पी जाती है और उसके बाद संरचनाओं को बनाया जाता है, तो वह विशेष न्यायाधिकरण या विशेष न्यायालय के अधिकार क्षेत्र में आ सकता है। विशेष न्यायालय द्वारा यह भी स्पष्ट किया गया कि उसके निर्णय को देखते हुए कि 1990 का L.G.O.P. संख्या 5 विशेष न्यायाधिकरण के समक्ष प्रायोज्य नहीं था, वह मामले के गुण-दोष में नहीं जा रहा था।

5. विशेष न्यायालय के 30 अक्टूबर, 1998 के फैसले को चुनौती देते हुए प्रस्तुत अपीलार्थी ने आंध्र प्रदेश के उच्च न्यायालय में 1998 का डब्ल्यू. पी. सं. 35561 दायर किया। दिनांक 4 जुलाई, 2000 के अपने फैसले से उच्च न्यायालय ने रिट याचिका को मंजूरी दी, विशेष न्यायालय के फैसले को दरकिनार कर दिया और इस बारे में कि क्या प्रत्यर्थी द्वारा संपत्ति हड़पी गई है और क्या अपीलार्थी को कब्जा देने के लिए उसे बेदखल किया जा सकता है नए सिरे से सुनवाई और निपटारे के लिए विशेष न्यायालय में मामला वापस कर दिया। यह तय करने में कि 1990 के L.G.O.P. सं. 5 विशेष न्यायाधिकरण के समक्ष प्रायोज्य था, उच्च न्यायालय ने अधिनियम की धारा

2(सी) पर भरोसा किया जिसमें कहा गया है कि भूमि में शानिल हैं भूमि में या उस पर अधिकार, भूमि से उत्पन्न होने वाले लाभ और भवन, संरचनाएं और पृथ्वी से जुड़ी अन्य चीजें या पृथ्वी से जुड़ी किसी भी चीज़ से स्थायी रूप से जुड़ी हुई चीजें। उच्च न्यायालय ने यह भी बताया कि 'भूमि' शब्द, जैसा कि अन्य कानूनों और उच्च न्यायालय द्वारा निर्णय के अनुसार और समान मामलों में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा परिभाषित किया गया है, में अति-संरचना, भवन आदि शामिल हैं जब तक कि उन्हें किसी विशेष अधिनियम द्वारा 'भूमि' की परिभाषा से बाहर नहीं रखा जाता है। उच्च न्यायालय ने अपीलार्थी के इस तर्क को स्वीकार किया कि अधिनियम न केवल भूमि पर बल्कि भवन वाली भूमि पर भी लागू होता है।

6. 1998 के डब्ल्यू. पी. संख्या 35561 में उपरोक्त निर्णय प्रतिवादी द्वारा स्वीकार किया गया क्योंकि उसे उसके द्वारा किसी भी उच्च मंच के समक्ष चुनौती नहीं दी गई थी। इस प्रकार, उक्त निर्णय अंतिम हो गया और प्रतिवादी के लिए बाध्यकारी हो गया।

7. उच्च न्यायालय द्वारा मामले की रिमांड के आधार पर विशेष न्यायालय न्यायालय द्वारा 1997 के एल. जी. ए. सं. 30 पर फिर से सुनवाई की गई और 16 नवंबर, 2000 को उसका निपटारा किया गया। 16 नवंबर, 2000 के निर्णय के अनुसार, अपील खारिज कर दिया गया, विशेष न्यायाधिकरण के आदेश को बरकरार रखा गया और प्रस्तुत प्रतिवादी को निर्देश दिया गया था कि वह याचिका में अनुसूचित संपत्ति का कब्जा प्रस्तुत अपीलार्थी को दो महीने की अवधि दे। अपील को खारिज करते हुए, विशेष न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि 5 फरवरी, 1969 का विक्रय पत्र, जिस पर अपीलार्थी ने भरोसा किया था, सही और वैध था और प्रतिवादी के लिए बाध्यकारी था। विशेष अदालत ने प्रतिवादी के इस तर्क को भी खारिज कर दिया कि वर्ष 1954 में संपत्ति को मौखिक रूप से उपहार में दिया गया था। यद्यपि प्रतिवादी के लिए विद्वान वकील ने यह तर्क देने की कोशिश की कि प्रत्यर्थी ने प्रतिकूल कब्जे से अपने मालिकाना हक को परिपूर्ण कर लिया था, विशेष न्यायालय द्वारा इस आधार पर कि प्रतिवादी ने विशेष न्यायाधिकरण के समक्ष ऐसा कोई मुद्दा नहीं उठाया था या उस संबंध में कोई

सबूत नहीं दिया था और विशेष न्यायाधिकरण के समक्ष इस मुद्दे पर बहस नहीं की गई और विशेष न्यायाधिकरण द्वारा इस मुद्दे पर कोई निष्कर्ष नहीं दर्ज किया गया था।

8. इसके बाद प्रतिवादी ने आंध्र प्रदेश के उच्च न्यायालय में 16 नवंबर, 2000 के विशेष न्यायालय के 1997 का एल. जी. ए. सं. 30 में फैसले को चुनौती देते हुए 2001 का डब्ल्यू. पी. सं. 304 दायर किया। जब उच्च न्यायालय में रिट याचिका पर सुनवाई की गई, मुख्य रूप से अपीलार्थी द्वारा दायर 1990 का L.G.O.P. सं. 5, जो कि निकटवर्ती भूमि के साथ एक घर की संपत्ति के संबंध में था, पर विचार करने के विशेष न्यायाधिकरण के अधिकार क्षेत्र का प्रश्न उठाया गया। रिट याचिकाकर्ता की ओर से यह दावा किया गया कि विशेष न्यायाधिकरण के पास घर की संपत्ति से निपटने के लिए अधिकार क्षेत्र नहीं था और इसलिए, विवादित आदेश बिना अधिकार क्षेत्र के थे। यह भी तर्क दिया गया कि उच्च न्यायालय द्वारा 1998 के डब्ल्यू. पी. सं. 35561 में पारित रिमांड आदेश एक प्रकार का अंतर्वर्ती आदेश था और अधिनियम के प्रासंगिक प्रावधान पर विचार किए बिना पारित किया गया था और इसलिए यह आदेश बिना अधिकार क्षेत्र के था, एक शून्य था और एक बाधा के रूप में काम नहीं करेगा। हालांकि,

रिट याचिका में प्रतिवादी की ओर से (यहाँ अपीलार्थी) यह तर्क दिया गया था कि रिमांड आदेश जो अंतिम और बाध्यकारी हो गया था, रेस ज्युडिकाटा के रूप में काम करेगा और कि भूमि पर मौजूद भवन और संरचनाएँ अधिनियम की धारा 2(सी) में परिभाषित 'भूमि' की परिभाषा के अंतर्गत आते हैं। यह भी बताया गया कि खुली भूमि का विस्तार भवन द्वारा आच्छादित क्षेत्र के विस्तार से बहुत अधिक था। पक्षों की दलीलों पर ध्यान देने के बाद, उच्च न्यायालय ने निम्नलिखित प्रश्नों पर विचार करना तय किया:

- (i) विचाराधीन संपत्ति भवन है या भूमि? और
- (ii) क्या भवन संपत्ति के साथ निकटवर्ती भूमि के संबंध में आवेदन पर निचार करना विशेष न्यायाधिकरण के अधिकार क्षेत्र में था?

9. 18 अप्रैल, 2007 के अपने फैसले में उच्च न्यायालय ने यह पाया कि विशेष न्यायाधिकरण द्वारा किए गए निष्कर्ष मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य पर अच्छी तरह से

स्थापित थे, कि साक्ष्य के पुनर्मूल्यांकन पर विशेष न्यायालय ने भी विशेष न्यायाधिकरण द्वारा किए गए निष्कर्षों के साथ सहमति व्यक्त की और कि विशेष न्यायालय और विशेष विशेष न्यायाधिकरण के निष्कर्ष पक्षों के बीच विवादास्पद मुद्दों पर समवर्ती थे। विशेष न्यायाधिकरण के समक्ष अपीलार्थी द्वारा दायर आवेदन के विभिन्न कॉलमों में प्रस्तुत विवरणों पर विचार करने के बाद उच्च न्यायालय ने कहा कि विवादित संपत्ति नगर निगम सं. 4-3-65 अपने निकटवर्ती खुली भूमि के साथ घर था। भले ही 1990 के L.G.O.P सं. 5 पर विचार करने और निर्णय लेने के विशेष न्यायाधिकरण अधिकार क्षेत्र का सवाल पर 1998 के पूर्ववर्ती डब्ल्यू. पी. सं. 35561 में पहले ही विचार किया जा चुका था और निर्णय लिया जा चुका था, उच्च न्यायालय ने विशेष न्यायाधिकरण के समक्ष उक्त आवेदन की प्रायोज्यता पर फिर से विचार किया। इस तरह के विचार के औचित्य पर उच्च न्यायालय ने अपने फैसले में कहा कि "मामले को नए सिरे से निपटाने के लिए विशेष न्यायालय को भेजने का फैसला मुख्य रूप से अधिनियम के एक प्रावधान की व्याख्या पर निर्भर था, जो शुद्ध रूप से कानून का एक प्रश्न है जिसमें व्याख्या प्रक्रिया शामिल है, इस तरह का निर्णय रेस ज्युडिकाटा के रूप में काम नहीं करेगा"। उच्च न्यायालय ने माना है कि "यदि कोई आवेदन भवन के अपनी निकटवर्ती भूमि के साथ कब्जे के लिए दायर किया जाता है क्योंकि भवन उस भूमि पर अवस्थित है और खाली भूमि से घिरा हुआ है, उसे भूमि हड़पना नहीं कहा जा सकता है, लेकिन यह निश्चित रूप से एक भवन के कब्जे का मामला है"।

उच्च न्यायालय के अनुसार, अधिनियम भूमि पर लागू होता है लेकिन भवनों पर नहीं और जब यह आरोप लगाया जाता है कि भूमि हड़प ली गई है, मौजूदा सुपर-संरचना के साथ भूमि या उस पर निर्माण एक साथ विवाद में संपत्ति के रूप में प्रतिबिंबित हो सकता है और ऐसे मामले में विशेष न्यायाधिकरण या विशेष न्यायालय की न्यायनिर्णयन की अधिकारिता होगी। लेकिन अगर आवेदन भवन और उसके साथ की निकटवर्ती खुली भूमि पर कब्जा के लिए है तो यह परी तरह विशेष न्यायाधिकरण और विशेष न्यायालय के न्यायाधिकार क्षेत्र में नहीं आयेगा।

उच्च न्यायालय ने "अपनी निकटवर्ती भूमि के साथ भवन" और "भूमि के साथ-साथ भवन" के बीच अंतर किया है। इस तरह के तर्क के आधार पर, उच्च न्यायालय ने

निर्णय किया है कि चूंकि मामले में विवाद निकटवर्ती भूमि के साथ भवन के संबंध में था, मामला स्पष्ट रूप से विशेष न्यायाधिकरण के अधिकार क्षेत्र में नहीं आएगा। उच्च न्यायालय ने यह भी कहा है कि भले ही यह प्रतीत होता है कि तथ्यात्मक पहलू पर आवेदक का मामला अच्छा है, दुर्भाग्य से आवेदक ने एक गलत मंच से संपर्क किया जिसे इसमें निर्णय करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था। 18 अप्रैल 2007 के फैसले के अनुसार, उच्च न्यायालय ने रिट याचिका को स्वीकार कर लिया और दिनांक 16 नवंबर, 2000 को विशेष न्यायालय के निर्णय के साथ-साथ विशेष न्यायाधिकरण के 13 जून, 1997 के आदेश को रद्द कर दिया।

10. अपीलार्थी ने 2001 के डब्ल्यू. पी. नं. 304 में उच्च न्यायालय के 18 अप्रैल, 2007 के उक्त निर्णय के खिलाफ यह अपील दायर की है। हमने पक्षकारों के विद्वान वकीलों को सुना है और अभिलेख पर रखी गई सामग्री पर विचार किया है।

11. विचार करने के लिए मूल प्रश्न यह है कि क्या उच्च न्यायालय यह अभिनिर्धारित करने में सही था कि अपीलार्थी का अधिनियम की धारा 7-ए के तहत आवेदन विशेष न्यायाधिकरण के समक्ष प्रायोज्य नहीं था क्योंकि "विवादग्रस्त संपत्ति अपनी निकटवर्ती भूमि के साथ का भवन था"। आंध्र प्रदेश की भूमि कब्जा (निषेध) अधिनियम, 1982 आंध्र प्रदेश राज्य में भूमि हड़पने की गतिविधि को प्रतिबंधित करने के लिए और उससे संबंधित मामलों के लिए प्रावधान करने के लिए अधिनियमित किया गया था। धारा 1 (3) के अनुसार यह अधिनियम, शहरी भूमि (अधिकतम सीमा और विनियमन) अधिनियम, 1976 की धारा 2 की कंडिका (एन) में परिभाषित शहरी समूह की सीमाओं के भीतर स्थित सभी भूमि पर और नगरपालिका पर लागू होता है। धारा 1 (3-ए) के अनुसार, यह अधिनियम किसी भी ऐसे क्षेत्रों में स्थित अन्य भूमि जो सरकार अधिसूचना द्वारा निर्दिष्ट करें पर भी लागू होता है। धारा 2 (ई) 'भूमि हड़पने' को इस प्रकार परिभाषित करती है:

" 'भूमि हड़पने' का अर्थ है किसी भी भूमि (चाहे वह सरकार की, स्थानीय प्राधिकरण की, एक धार्मिक या धर्मार्थ संस्था या दान की, वक्फ सहित, या किसी निजी व्यक्ति की हो) पर किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह द्वारा

द्वारा बिना किसी वैध अधिकार के अवैध रूप से कब्जा करने के उद्देश्य से से को हड़पने की हर गतिविधि, या अवैध किरायेदारी या पट्टा और लाइसेंस का समझौता या इस संबंध में कोई अन्य अवैध समझौते बनाना या बनवाना, या उस पर बिक्री या किराए के लिए अनधिकृत संरचनाओं का निर्माण करना, या ऐसी भूमि किसी व्यक्ति को किराये या पट्टे और लाइसेंस के आधार पर निर्माण, या उपयोग, या कब्जा का लिए देना, और शब्द 'भूमि हड़पना' का अर्थ उसी के अनुसार लगाया जाएगा।"

धारा 2(सी) के तहत 'भूमि' को इस प्रकार परिभाषित किया गया है:

" 'भूमि' में भूमि में या उस पर अधिकार, भूमि और भवनों, संरचनाओं और संलग्न अन्य चीजों, पृथ्वी पर या पृथ्वी से स्थायी रूप से जुड़ा हुआ, या पृथ्वी से जुड़े हुए किसी भी चीज़ से स्थायी रूप से बंधा हुआ, से उत्पन्न होने वाले लाभ शामिल हैं"।

'भूमि' की उपरोक्त परिभाषा यह स्पष्ट करती है कि अभिव्यक्ति 'भूमि' में इमारतें, संरचनाएं संरचनाएं और पृथ्वी से संलग्न अन्य चीजें शामिल हैं"। 'भूमि' की ऐसी समावेशी परिभाषा को ध्यान में रखते हुए, पृथ्वी से जुड़ी इमारत को हड़पना इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए भूमि हड़पना के बराबर है। इसलिए, उच्च न्यायालय से यह अभिनिर्धारित करने में त्रुटि हुई कि अधिनियम भूमि पर लागू होता है लेकिन भवन पर नहीं। उच्च न्यायालय स्पष्ट रूप से यह अभिनिर्धारित करने में गलत था कि "यदि निकटवर्ती भूमि के साथ भवन के कब्जे के लिए एक आवेदन दायर किया गया है, क्योंकि विचाराधीन भवन भूमि पर अस्तित्व में है और खाली भूमि से घिरा हुआ है, यह नहीं कहा जा सकता कि यह भूमि हड़पने का मामला है"।

हमारी दृष्टि में, अगर एक भवन उस भूमि के साथ जिस पर वह बना है अधिनियम की धारा 7-ए के तहत आवेदन की विषय वस्तु है, तो ऐसा आवेदन विशेष न्यायाधिकरण के समक्ष प्रायोज्य है। उच्च न्यायालय द्वारा "निकटवर्ती भूमि के साथ भवन" और "भवन के साथ भूमि" के बीच किया गया अंतर अति-तकनीकी है और यह अधिनियम के उद्देश्य उद्देश्य को ही समाहित कर देता है। अधिनियम के धारा 2(सी) के तहत 'भूमि' की परिभाषा के आलोक में अनुसार उपरोक्त दोनों विवरण 'भूमि हड़पने' के परिप्रेक्ष्य में व्यावहारिक रूप से समानार्थी हैं और उनके बीच अंतर करने का कोई तर्क या औचित्य नहीं है। इसलिए, उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करने में गलती की कि अपीलार्थी द्वारा दायर आवेदन विशेष न्यायाधिकरण के समक्ष प्रायोज्य प्रायोज्य नहीं था।

12. यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि अपीलार्थी द्वारा प्रस्तुत आवेदन के कॉलम 10 में भूमि का सर्वेक्षण संख्या और उप-विभाजन संख्या इस प्रकार दी गई थी:

"घर और निकटवर्ती भूमि: घर No.4-3-65, (पुराना) और 9341 वर्ग फुट की खुली जमीन"

कॉलम 11 में, भूमि का विस्तार इस प्रकार बताया गया था:

"खुली भूमि 9341 वर्ग फुट, घर का आधार (प्लिंथ) क्षेत्र 1114 वर्ग फुट।

किए गए दावे के सारांश और कानून का प्रावधान जिसके तहत इसकी मांग की गई है से संबंधित कॉलम 14 की प्रविष्टि निम्नलिखित है:

"घर और निकटवर्ती भूमि अर्थात् घर संख्या 4-3-65 पुराने No.2-5-256 के अनुरूप याचिकाकर्ता की संपत्ति है। याचिकाकर्ता ने उक्त घर पंजीकृत बिक्री पत्र दिनांक 5.2.1969 के तहत खरीदा। प्रतिवादी ने जबरन घर पर कब्जा कर लिया और तब से वह उक्त घर और खुली भूमि पर काबिज है। पंजीकृत बिक्री विलेख निम्नलिखित दो गवाहों द्वारा सत्यापित किया गया था:

1. सैयद अफजल, पुत्र सैयद शब्बीर हुसैन, निवासी आदिलाबाद

2. स्वर्गीय शेख अहमद पुत्र शेख अब्दुल्ला निवासी आदिलाबाद।

स्वर्गीय अमीरुल्ला खान दस्तावेज़ के लेखक थे।

यह भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि ऊपर उल्लिखित पंजीकृत बिक्री पत्र न केवल भवन बल्कि भवन के आंगन और पिछवाड़े के संबंध में भी था। अपीलार्थी द्वारा दायर आवेदन की उपर्युक्त प्रविष्टियों से यह स्पष्ट है कि विवाद का विषय केवल 1114 वर्ग फीट वाले प्लिंथ क्षेत्र वाला भवन नहीं था बल्कि उसमें 9341 वर्ग फीट क्षेत्रफल की खुली भूमि भी शामिल है। दावे के सारांश में, अपीलार्थी के आवेदन में विशेष रूप से "घर और निकटवर्ती भूमि" के संबंध में दावा किया गया था। यह विशेष रूप से आरोप लगाया गया था कि प्रतिवादी ने जबरन घर पर कब्जा कर लिया और तब से वह घर और खुली भूमि पर काबिज है। ऐसी परिस्थितियों में, यह नहीं कहा जा सकता कि विवाद की विषय वस्तु केवल भवन था। विवाद का विषय यह भवन और आसपास की खुली भूमि थी।

13. उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करने में भी गलती की कि केवल खुली भूमि पर कब्जा और उसपर एक भवन का निर्माण ही भूमि हड़पने के रूप में माना जा सकता है और खुली भूमि के साथ किसी भवन के कब्जे को अधिनियम के तहत भूमि हड़पना नहीं माना जा सकता है। जब भूमि के साथ उस पर बने हुए भवन पर कब्जा किया जाता है, यह भूमि हड़पने के बराबर होगा।

14. उपर्युक्त चर्चा के आलोक में हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि अधिनियम के धारा 7-ए के तहत अपीलार्थी की विशेष न्यायाधिकरण के समक्ष दायर आवेदन प्रायोज्य था और कि विशेष न्यायाधिकरण के पास उठाए गए निनाद पर निर्णय लेने के लिए आवश्यक अधिकार क्षेत्र था।

15. हमारे निष्कर्ष को ध्यान में रखते हुए कि अपीलार्थी द्वारा विशेष न्यायाधिकरण के समक्ष दायर आवेदन प्रायोज्य था और कि विशेष न्यायाधिकरण के पास उठाए गए निनाद पर निर्णय लेने के लिए आवश्यक अधिकार क्षेत्र था, उच्च

न्यायालय का आदेश जिसे चुनौती दी गई है, खारिज करने योग्य है और विशेष न्यायाधिकरण का आदेश और विशेष न्यायालय का निर्णय बहाल करने योग्य है।

इसलिए, हम उच्च न्यायालय के उस निष्कर्ष की सत्यता की जाँच करना अनावश्यक समझते हैं कि कि उच्च न्यायालय का 1998 के पूर्ववर्ती डब्ल्यू. पी. सं. 35561 में निर्णय बाद में 2001 का डब्ल्यू. पी. सं. 304 में विशेष न्यायाधिकरण के समक्ष आवेदन और उसके अधिकारक्षेत्र पर विचार करने के संबंध में रेस जुडिकाटा के रूप में काम नहीं करता है।

16. हालाँकि, यह मानते हुए भी कि 1998 के डब्ल्यू. पी. 35561 का निर्णय रेस जुडिकाटा के रूप में काम नहीं करता था, हम यह कहने के लिए विवश हैं कि भले ही विद्वान न्यायाधीश जिन्होंने 2001 का डब्ल्यू. पी. सं. 304 निर्णीत किया पूर्व में समान शक्ति की एक समन्वित पीठ द्वारा 1998 का डब्ल्यू. पी. सं. 35561 में दिए गए अधिनियम की धारा 2 (सी) की व्याख्या और याचिका में अनुसूचित संपत्ति पर इसके प्रयोग से सहमत नहीं थे, न्यायिक अनुशासन और व्यवहार में उन्हें मुद्दे को बड़ी पीठ को संदर्भित करने की आवश्यकता थी। विद्वान न्यायाधीश गण समान शक्ति वाली समवर्ती पीठ द्वारा दिए गए कानून के वक्तव्य को निरस्त करने में सही नहीं थे। यह एक एक स्वीकृत नियम या सिद्धांत है कि एक पीठ द्वारा दिए गए कानून के वक्तव्य को समान या उससे कम संख्या वाली न्यायाधीशों की पीठ पर बाध्यकारी माना जाता है। पूर्ववर्ती पीठ के निर्णय के बारे में संदेह या असहमति के मामले में, अच्छी तरह से स्वीकृत और वांछनीय प्रथा यह है कि बाद की पीठ द्वारा मामले को एक बड़ी पीठ को भेजा जाएगा।

17. भारत संघ और अन्य बनाम रघुबीर सिंह (मृत) एलआर द्वारा आदि [(1989) 2 एस. सी. सी. 754], (पारा 27 और 28), में इस न्यायालय की एक संविधान पीठ ने निर्णय दिया:

" 27. फिर एक खंड पीठ द्वारा घोषित कानून का बाद में उसी बिंदु पर कम संख्या वाली न्यायाधीशों की खंड पीठ के समक्ष उठाए गए मामले में प्रभाव के संबंध में क्या स्थिति होनी चाहिए?

इस मामले में कोई संवैधानिक या वैधानिक निर्देश नहीं है, और यह बिंदु पूरी तरह से भारत में परिपाटी द्वारा नियंत्रित किया जाता है जिसे एक सदी से भी अधिक समय से न्यायालयों द्वारा बार-बार पुष्टि करके एक वरिष्ठ न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून में स्थिरता और निश्चितता को बढ़ावा देने के लिए, आदर्श शर्त यह होगी कि पूरा न्यायालय कानून के प्रश्नों का निर्णय करने के लिए सभी मामलों में बैठना चाहिए, और यही कारण है कि संयुक्त राज्य अमेरिका का सर्वोच्च न्यायालय ऐसा ही करता है। लेकिन न्यायालय के ध्यान की मांग करने वाले काम की मात्रा को ध्यान में रखते हुए, यह आवश्यक पाया गया है कि प्रथा और सुविधा के एक सामान्य नियम के रूप में भारतीय न्यायालयों को खंडों में बैठना चाहिए, प्रत्येक खंड का गठन न्यायाधीशों से होगा जिनकी संख्या न्यायिक अपेक्षाओं और आवश्यकताओं, मामले की प्रकृति, उसके संबंध में किसी भी वैधानिक अधिदेश सहित मामला, और ऐसे अन्य विचारों से जिसमें मुख्य न्यायाधीश, जिन्हें ऐसा अधिकार परंपरा द्वारा हस्तांतरित किया जाता है, सबसे उपयुक्त पाते हैं, के आधार पर निर्धारित की जा सकती है। कानून के बिंदुओं पर विभिन्न खंडों द्वारा असंगत निर्णयों की संभावना से बचने के लिए इस नियम को बनाया गया है। कानून के विकास में स्थिरता और निश्चितता और इसकी समकालीन स्थिति को बढ़ावा देने के लिए एक खंड पीठ द्वारा कानून के वक्तव्य को समान या कम संख्या वाले खंड पीठ पर बाध्यकारी माना माना जाता है। भारत में इस सिद्धांत का न्यायाधीशों की कई पीढ़ियों द्वारा पालन किया किया जा रहा है। हम कुछ हाल के मामलों का उल्लेख कर सकते हैं -

जॉन मार्टिन बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, (1975) 3 एस.सी.सी. 836 में तीन न्यायाधीशों न्यायाधीशों की एक खंड पीठ ने *हरधन साहा बनाम पश्चिम बंगाल राज्य*, (1975) 3 एस.सी.सी. 198 में पाँच न्यायाधीशों की एक खंड पीठ द्वारा घोषित निर्णय का *भूत नाथ नाथ माटे बनाम पश्चिम बंगाल राज्य*, (1974) 1 एस.सी.सी. 645 में का दो न्यायाधीशों की एक खंड पीठ के निर्णय पर वरीयता देते हुए पालन करना सही समझा।

पुनः *इंदिरा नेहरू गाँधी बनाम राज नारायण*, 1975 सप. एस. सी. सी. 1, में बेग जे. ने अभिनिर्धारित किया कि पाँच न्यायाधीशों की संविधान पीठ *केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य*, (1973) 4 एससीसी 225 में तेरह न्यायाधीशों के निर्णय से बाध्य है।

गणपति सीताराम बलवलकर बनाम वामन श्रीपद मगे, (1981) 4 एस. सी. सी. 143, में इस न्यायालय द्वारा स्पष्ट रूप से कहा गया है कि कानून के किसी बिंदु पर लिया गया इस न्यायालय के चार न्यायाधीशों की खंड पीठ का दृष्टिकोण इस न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की एक खंड पीठ पर बाध्यकारी थी। और *मट्टलाल बनाम राधे लाल*, (1974) 2 एस. सी. सी. 365, में इस न्यायालय ने विशेष रूप से कहा कि जहाँ इस न्यायालय की दो अलग-अलग खंड पीठ द्वारा व्यक्त किए गए दृष्टिकोणों में सामंजस्य नहीं हो सकता है वहाँ न्यायाधीशों की बड़ी संख्या वाली पीठ की घोषणा को न्यायाधीशों की छोटी संख्या वाली खंड पीठ पर वरीयता दी जानी चाहिए। इस न्यायालय ने *आचार्य महाराजश्री नारंद्रप्रसादजी आनंदप्रसादजी महाराज बनाम गुजरात राज्य*, (1975) 1 एस. सी. सी. 11 में यह भी निर्धारित किया है कि जहाँ दो खंडपीठों में समान संख्या में न्यायाधीश हों वहाँ भी एक खंड पीठ दूसरी खंड पीठ के विचारों की सही या गलत होने पर निचार नहीं कर सकती है। *भारत संघ बनाम गॉडफ्रे फिलिप्स इंडिया लिमिटेड*, (1985) 4 एस. सी. सी. 369 में इस सिद्धांत की पुष्टि की गई थी जिसमें यह नोट किया गया कि जीत राम शिव कुमार बनाम हरियाणा राज्य, (1981) 1 एस. सी. सी. 11 में इस न्यायालय के दो न्यायाधीशों की एक खंड पीठ का दृष्टिकोण पहले की दो न्यायाधीशों की खंड पीठ द्वारा *मोतीलाल पदमपत शुगर मिल्स बनाम उत्तर प्रदेश राज्य*, (1979) 2 एस.सी.सी. 409 में द्वारा इस मुद्दे पर लिए गए दृष्टिकोण से अलग था कि क्या प्रोमिसरी एस्टोपल के सिद्धांत को कार्यकारी आवश्यकता के आधार पर पराजित किया जा सकता है, और यह अभिनिर्धारण कि यह पूरी तरह अस्वीकार्य था, अच्छी तरह से स्वीकृत और वांछनीय प्रथा के अनुसार बाद की पीठ ने मामले को एक बड़ी पीठ को संदर्भित किया जब विद्वान न्यायाधीशों ने पाया कि स्थिति की मांग यही थी।

28. हमारी राय है कि एक खंड पीठ द्वारा कानून की घोषणा इस न्यायालय की दूसरी समान या कम संख्या वाली न्यायाधीशों खंड पीठ पर बाध्यकारी है। और निर्णय के बाध्यकारी होने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि ऐसा निर्णय न्यायालय की पूर्ण पीठ या न्यायालय की संविधान पीठ द्वारा दिया गया हो।"

दाउदी बोहरा समुदाय के केंद्रीय बोर्ड और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य [(2005) [(2005) 2 एससीसी 673], (पैरा 12), में

इस न्यायालय की एक संविधान पीठ ने कानूनी स्थिति का सारांश निम्नलिखित शब्दों में दिया:

" (1) इस न्यायालय के अधिक शक्ति की एक बेंच द्वारा दिए गए निर्णय में निर्धारित कानून किसी भी बाद वाले किसी भी कम शक्ति या समान शक्ति वाली पीठ के लिए बाध्यकारी है।

(2) कम शक्ति वाली पीठ अधिक शक्ति वाली पीठ द्वारा ली गई विधि के दृष्टिकोण से असहमति या विरोध नहीं जता सकती है। संदेह के मामले में कम कोरम की पीठ मुख्य न्यायाधीश का ध्यान आकर्षित कर सकती है और अनुरोध कर सकती है कि सुनवाई के लिए इसे उस पीठ की तुलना में अधिक शक्ति वाली पीठ के समक्ष रखा जाय जिसके निर्णय पर विचार करना है। पूर्ववर्ती पीठ के निर्णय पर एक समान शक्ति की पीठ ही संदेह कर सकती है, जिसके बाद मामले को सुनवाई के लिए उस पीठ से अधिक शक्ति वाली पीठ के समक्ष रखा जायेगा जिसके निर्णय की सही या गलत होने पर संदेह किया जा रहा है।

(3) उपरोक्त नियम दो अपवादों के अधीन है:

(i) उपरोक्त नियम मुख्य न्यायाधीश के विवेकाधिकार को बाध्य नहीं करते हैं जिन्हें रॉस्टर तैयार करने और किसी विशेष मामले को किसी विशेष शक्ति की पीठ के समक्ष सुनवाई के लिए रखने का निर्देश दे सकने का अधिकार है; और

(ii) ऊपर दिए गए नियमों के बावजूद, यदि मामला पहले ही बड़ी शक्ति की पीठ के समक्ष सुनवाई के लिए आ चुका है और वह पीठ स्वयं महसूस करती है कि कम शक्ति की पीठ द्वारा लिए गए कानून के दृष्टिकोण, जो संदेह में है, में सुधार या पुनर्विचार

की आवश्यकता है या फिर अपवाद के रूप में (और नियम के रूप में नहीं) और कारण बताते हुए मामले की सुनवाई और विचाराधीन पिछले निर्णय की शुद्धता की जांच कर सकती है जिससे मुख्य न्यायाधीश को संदर्भित करने और पीठ का गठन करने के आदेश देले की आवश्यकता न हो।

उच्चतम न्यायालय के संदर्भ में कहे गए उपरोक्त सिद्धांत और मानदंड समान रूप से उच्च न्यायालय पर भी प्रासंगिक लागू होते हैं।

18. ऊपर बताए गए कारणों के लिए, हम अपील की अनुमति देते हैं और 2001 का डब्ल्यू. पी. सं. 304 में 18 अप्रैल, 2007 के विवादित फैसले को रद्द करते हैं। हैं। 1990 के L.G.O.P. सं. 5 में विशेष न्यायाधिकरण का 13 जून, 1997 का आदेश और 1997 के एल. जी. ए. सं. 30 में विशेष न्यायालय का दिनांक 16 नवंबर, 2000 के निर्णय को बरकरार रखा गया है। प्रतिवादी को आज से दो महीने की अवधि के अंदर अपीलार्थी को याचिका में अनुसूचित संपत्ति देने का निर्देश दिया जाता है। ऐसा न करने पर, संबंधित राजस्व मंडल अधिकारी याचिका में अनुसूचित संपत्ति अपीलार्थी को उपरोक्त दो महीने की अवधि के बाद दो महीने की अवधि के भीतर सौंप देगा।

अपील की अनुमति दी गई।